DOI: 10.51220/hjssh.v3i1.7

Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 3 pp. 47-51, 2008

भारतीय दर्शन में माया एवं ब्रह्म

सरिता सिंह
ह्यूमेनिटिज एवं सोशल साइंस विभाग
उमानाथ सिंह इन्स्टीच्यूट ऑफ इन्जीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर 222001

Received 10.12.2007 Accepted 19.12.2008

ABSTRACT

यद्यपि माया शब्द का प्रयोग प्रायः सभी भारतीय दर्शन में हुआ है तथापि मायावाद मूलतः अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है। मायावाद ब्रह्म चिन्तन की ओर ले जाने वाला अचूक मार्ग है। उससे वैराग्य उत्पन्न होता है और अभ्यास द्वारा ब्रह्मज्ञान सुलभ हो जाता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए भक्ति साधन है और इस रूप में आचार्य शंकर ने भक्ति की उपादेयता को स्वीकार किया है पर अद्वैत बोध ही मोक्ष है, यह निर्विवाद है।

Key words:- *Maya, Brahma, Liberation.*

मायावाद की अवधारणा

मायावाद भारतीय दर्शन का एक प्रमुख सिद्धान्त है और वेदान्त के सभी सम्प्रदायों ने ब्रह्म और जगत, सत्ता और संभूति के सम्बन्ध को समझाने के लिए मायावाद को स्वीकार किया है। पर माया शब्द की व्याख्या विभिन्न सम्प्रदायों में अलग-अलग प्रकार से की गयी है। शंकर के अनुसार शंकर के दर्शन को एक श्लोकार्थ में कहा जा सकता है "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मेव नापरः।" शंकराचार्य ने सत्य शब्द की एक विशिष्ट परिभाषा दी। सत् वह है जो त्रिकाल अबाधित है अर्थात् जिसके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। त्रिकाल सत्य, नित्य, निर्विशेष अपरिणामी कूटस्थ ब्रहम है। परिणामस्वरूप विशेष परिवर्तनशील भेद जागतिक सत्ता ब्रह्म का विवर्त है। यह विवर्त ही माया है। यद्यपि माया शब्द का प्रयोग प्रायः सभी भारतीय दर्शन में हुआ है तथापि मायावाद केवल अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है। अद्वैत वेदान्त से भिन्न जितने दर्शन हैं वे माया का प्रयोग इन्द्रजाल, असत्, भ्रम, स्वप्न, रहस्य और मोह के अर्थ में करते हैं किन्तु अद्वैत वेदान्त माया का प्रयोग इन अर्थों में नहीं करता है। संस्कृत शब्द 'माया' का विश्व की किसी दूसरी भाषा में पर्याय नहीं है। आचार्य शंकर के अनुसार एकमात्र ब्रह्म सत् है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछ है वह सब मिथ्या है, जगत् मिथ्या है, जीव और ब्रह्म

© SHARAD

में कोई भेद नहीं है। मिथ्या असत् या असत्य का पर्यायवाची नहीं है। वास्तव में मिथ्यात्व माया का पर्यायवाची नहीं है। जगत् मिथ्या है- इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि जगत भ्रम है या जगत् असत् है बल्कि इसका अर्थ है कि ब्रह्म की अपेक्षा जगत् असत् है, ब्रह्म ज्ञान होने पर जगत् का ज्ञान निवृत्त हो जाता है, तर्कत: हम जगत् को न तो सत् कह सकते हैं और न असत् वह इनमें विलक्षण है, जगत् की सत्ता त्रैलौकिक निषेध का प्रतियोगी है। जगत् की सत्ता स्वाश्रयनिष्ठ अत्यन्ताभाव प्रतियोगी है। इन अर्थों के अतिरिक्त अद्वैत वेदान्त का जगत्-विषयक सिद्धान्त है। वास्तव में जो दृश्य है वह मिथ्या है जैसे रस्सी में सर्प का अनुभव मिथ्या है, और जगत् वैसे ही है। यह तर्क अद्वैत वेदान्तियों ने जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए दिया है। आचार्य शंकर ने किसी भी वस्तु का जन्म या उत्पत्ति को ही केवल माया नहीं कहा बल्कि समस्त विषयों को माया-जाल कहा है, क्योंकि ये विषय अनुभव में आते हैं, परन्तु सत्य नहीं है। मायावाद जगत् की व्याख्या है, विषयानुभव की व्याख्या है। तत्त्वत: केवल एक और अद्वितीय ब्रह्म सत्य है, उससे भिन्न जो कुछ भी है वह मिथ्या है। मायावाद तर्कत: ब्रह्मवाद से सिद्ध होता है तार्किक दृष्टि से जगत् न तो सत् है न असत् वह अनिवर्चनीय है। माया अनिवर्चनीय है।[4] अनिवर्चनीयत्व का अर्थ सत् और असत् की कोटियों से भिन्नत्व है। मूल्यात्मक दृष्टि से जगत् का महत्व उतना नहीं है जितना आत्मा का है, क्योंकि जगत् नश्वर है और आत्मा अनश्वर। मायावाद एक मूल्य सिद्धान्त है। यह हमें दु:ख से आनन्द की ओर, असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमतरत्व की ओर और अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। माया के स्वरूप लक्षण के अतिरिक्त कुछ तटस्थ लक्षण भी है, जैसे- नाम और रूप माया है। माया ब्रह्म-विवर्तवाद है। माया, सत्व, रजत् तथा तमस् से युक्त है- इस अर्थ में माया सांख्य की प्रकृति से मिलती-जुलती है। किन्तु सांख्य की प्रकृति स्वतंत्र है, यहां माया ब्रह्म के अधीन है। माया ब्रह्म की अध्यक्षता में सृष्टि करती है, वह ब्रह्म की अपरा शक्ति है। मायावाद शक्ति परिणामवाद है। माया जगत् का उपादान कारण है, यहां माया ब्रह्म की शक्ति कहा गया है। वह रहस्यमय, अचिन्त्य, विचित्र तथा अनिर्वचनीय है। इस शक्ति के आवरण, विक्षेप और मल- ये तीन रूप है जिसके द्वारा वह क्रमश: तत्वज्ञान को ढकती है, जगत् का प्रदर्शन करती है और (मल शक्ति से वह) जगत् को दु:खमय बना देती है। माया ब्रह्म की स्वाभाविक शक्ति न होकर औपाधिक शक्ति है। मायावाद औपाधिक शक्तिवाद है। उपाधि का संप्रत्यय मायावाद का केन्द्र बिन्दु है। माया वास्तव में ब्रह्म की उपाधि है। वह अपने गुणों का आरोप ब्रह्म में कर देती है। परिणामस्वरूप ब्रह्म के दो रूप है-मायायुक्त ब्रह्म या निरूपाधिक ब्रह्म और माया सहित ब्रह्म या सोपाधिक ब्रह्म।[1]

मायावाद का विकास एवं उस पर आपत्तियां

मायावाद के विकास को कई अवस्थाएं है। पहली अवस्था वेदों और उपनिषदों में है- इसे रहस्यवादी मायावाद कह सकते हैं। दूसरी अवस्था बौद्ध मत में है- इसे हम विज्ञानवादी अवस्था कह सकते है। तीसरी अवस्था गौड़पाद और शंकर के अद्वैतवाद में है- इसे हम अनिर्वचनीय अवस्था कह सकते हैं। मायावाद का विकास यहां तक ही नहीं रूक गया। इसके आगे वैष्णव और शैव दर्शनों में भी विकास हुआ। कुल मिलाकर माया को विवर्तरूप, अध्यासरूप, सदसत्, विलक्षण, अनादि परन्तु सान्त, भावरूप आवरण-विक्षेप शक्ति युक्त, जड़-प्रकृति रूप, विज्ञान-निरस्या, ब्रह्म की विलक्षण शक्ति आदि के रूप में माना जाता है।

सभी वैष्णव दर्शनों ने जगत् को सत् माना है और मायावाद का निराकरण किया है। रामानुजाचार्य ने शंकर के मायावाद पर जो आपत्तियां उठाई है उनमें प्रमुख है- आश्रयानुपपत्ति, ब्रह्मावरकत्वानुपपत्ति, स्वरूपानुपपत्ति, अनिर्वचनीयानुपपत्ति, प्रमाणानुपपत्ति, निवर्त्तकानुपपत्ति, निवृत्यानुपपत्ति।[3] यदि ध्यान से देखा जाए तो वैष्णविद्वानों ने माया को अपने अन्दर स्थान दिया है। वे सभी माया को ब्रह्म की शक्ति मानते हैं। इस शक्ति को वे अद्वैत वेदान्तियों की तरह अव्यक्त, अनादि और त्रिगुणात्मक भी कहते हैं, लेकिन इसको वे अविद्या से अभिन्न नहीं कहते हैं और अनिर्वचनीय मानते हैं। अद्वैत वेदान्ती माया को अविद्या तथा अनिर्वचनीय भी मानते हैं।

माया एवं ब्रह्म

हम सबके सामने मूल प्रश्न है- शक्तिमान ब्रह्म और मायाशक्ति में क्या सम्बन्ध है? आचार्य मध्व भेद मानते हैं। आचार्य बल्लभ अभेद मानते हैं। निम्बार्क भेदाभेद मानते हैं, और चैतन्य अचिन्त्य भेदाभेद मानते हैं तथा रामानुज विशेषण मानते हैं किन्तु इस सभी सम्बन्धों का औचित्य-तभी तक तर्कसंगत है जब तक कि उनका आधर केवल अद्वैतवाद और मायावाद हो। कारण, किसी वैष्णव दार्शनिक ने यह नहीं सिद्ध किया है कि शक्ति तथा शक्तिमान का सम्बन्ध अनिवार्य है या सम्बन्ध पूर्णतया निर्वाच्य तथा चिन्त्य है। सभी ने ब्रह्म की अनन्त शक्तियों को माना है और उन्हें अचिन्त्य कहा है। साथ ही उन्होंने यह भी माना है कि ब्रह्म का सीधा और अनविार्य सम्बन्ध किसी भी शक्तिविशेष से नहीं है। यहां तक कि सृजनात्मक शक्ति से भी वह अनिवार्यत: बद्ध नहीं है और उसका एक सर्वथा अप्राकृत लोक भी है तथा उसकी लीलाएं अप्राकृत भी है। इन सभी वादों पर विचार करने

पर पता चलता है कि अद्वैतवेदान्त का मायावाद वास्तव में सभी वैष्णव दर्शनों के अन्तःस्थल में विराजमान है। वैष्णव दर्शनों ने मायावाद का जो खण्डन किया है वह सत् ही है। स्वयं उनके दर्शन की प्रतिष्ठापना में मायावाद की शिला विद्यमान है। माया को अचिन्त्य शक्ति कहना इसका प्रबलतम प्रमाण है। चैतन्य के वेदान्त में मायावाद अपने अत्यन्त सुन्दर रूप में निखरा है क्योंकि उसके जिस अचिन्त्य पर बल दिया गया है वह अनिर्वचनीय के परिवार का सदस्य है। वह माया को रहस्य से अभिन्न करते हुए उसके नीतिशास्त्रीय, सौन्दर्यशास्त्रीय और धर्मशास्त्रीय रूपों को व्याख्यायित करता है। कदाचित् यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि अद्वैत वेदान्त के मायावाद को आत्मसात् करने की भावना ने ही वैष्णव दर्शनों के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिस कट्टरता से रामानुज ने मायावाद का निराकरण किया था वह वैष्णव दर्शन के चरम विकास की अवस्था में चैतन्यमत में समाप्त हो गयी और मायावाद को भक्ति-दर्शनों से जोड़ लिया गया। इस गठबन्धन में अद्वैतवेदान्तियों ने भी अपनी भूमिका निभायी क्योंकि उन्होंने भी भक्ति को मायावाद में आत्मसात किया। जो भक्ति माया की प्रतिद्वंदिनी थी वह माया के साथ-साथ ब्रह्म की सपत्नी मान ली गयी। इसने माया और भक्ति के विरोध को दूर कर दिया। कुछ भी हो, वैष्णव दर्शनों ने मायावाद का जी खण्डन किया है, उसके फलस्वरूप श्रीधर, मधुसूदन सरस्वती आदि परवर्ती काल के अद्वैतवेदान्तियों ने काफी लाभ उठाया और उन्होंने भक्ति को माया के समान दर्जा दिया है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी विचार से माया और भक्ति को ईश्वर की दो पत्नियाँ कहा है। अद्वैत नरहरि ने तो बोधसार में यहाँ तक कहा है कि भक्ति के लिए कल्पित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर हैं। रामानुज ने भी भक्ति को एक विशेष प्रकार का ज्ञान बताया है। इसी प्रकार वैष्णव दर्शन भी भक्ति के द्वारा अद्वैत ज्ञान कराता है, ऐसा परवर्ती काल के अद्वैतवेदान्तियों का निश्चय है। इस निश्चय को देखते हुए मायावाद का जो स्वरूप उनके मत में उभरता है वह माया को एक मूल्य मीमांसात्मक संप्रत्यय बना देता है। यही आचार्य शंकर का भी अभिमत है क्योंकि उन्होंने स्पष्ट कहा है कि सृष्टि चिन्तन निष्प्रयोजन है और परमार्थ के पथिक को सृष्टि चिन्तन छोड़कर ब्रह्म चिन्तन करना चाहिए।[2]

मायावाद ब्रह्म चिन्तन की ओर ले जाने वाला अचूक मार्ग है। उससे वैराग्य उत्पन्न होता है और अध्यास द्वारा ब्रह्मज्ञान सुलभ हो जाता है। समस्त आध्यात्मवादी एवं ईश्वरवादी दार्शनिकों के समक्ष ईश्वर और जगत् के सम्बन्ध की व्याख्या करने की कठिन समस्या रही है। आस्था के आधर पर ईश्वर में विश्वास करने वाले भक्तों के लिए कोई समस्या नहीं है। ये सारी सृष्टि को ईश्वर की

इच्छा या ईश्वर की लीला मानकर संतुष्ट हो जाते हैं। किन्तु बुद्धि के आधर पर परम सत्ता और जगत् के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए दार्शनिकों के सामने एक कठिनाई उत्पन्न होती है। अद्वैत वेदान्ती परम सत्ता को निर्गुण, निराकार, अद्वैत और देशकाल के परे मानते हैं। सृष्टि दैशिक और कालिक रचना है और देश काल की अवधरणा द्वैत पर आधरित है। इसलिए अद्वैत वेदान्तियों के लिए माया सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीय है जिसकी पारमार्थिक स्वरूप को सामान्य बुद्धि द्वारा अग्राह्य मानते हैं और माया को परम सत् के विभिन्न रूपों में आभाषित करने वाली एक रहस्यमयी शक्ति मानते हैं जिसका निरसन ज्ञान द्वारा पारमार्थिक स्तर पर हो जाता है।

माया की रहस्यमयी शक्ति का निरसन करने के लिए माया कृति बन्धनों को काटना आवश्यक है। द्वैतभाव माया की ही रचना है। अहंकार ममकार को दूर करने के लिए भक्ति और निष्काम कर्म साधन हो सकते हैं। भक्ति और निष्काम कर्म का उपचारात्मक महत्व है। पर मुक्ति आत्मज्ञान ही है। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए भक्ति साधन है और इस रूप में आचार्य शंकर ने भक्ति की उपादेयता को स्वीकार किया है पर अद्वैत बोध ही मोक्ष है, यह निर्विवाद है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य शंकर का मायावाद और वैष्णव वेदान्त दर्शन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, शोध प्रबन्ध - सरिता सिंह, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
2. आचार्य शंकर का मायावाद : एक विहंगम दृष्टि - डॉ0 सरिता सिंह। युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007।
3. शंकर के मायावाद पर रामानुज की 'सप्त अनुपपत्ति' का विश्लेषण- सरिता सिंह, Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities 2:45-53, 2007
4. Teach yourself Philosophy: Indian Philosophy- Dr. R. P. Sharma, Bharti Bhawan, Patna, 1985.